International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2025; 7(2): 207-210
Received: 02-12-2024
Accepted: 05-01-2025

डॉ. आनन्द कुमार
सह-आचार्य, संस्कृत विभाग,
देशबंधु महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय), कालका जी,
नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आनन्द कुमार
सह-आचार्य, संस्कृत विभाग,
देशबंधु महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय), कालका जी,
नई दिल्ली, भारत

मनु की दृष्टि में शिक्षा का महत्व

आनन्द कुमार

DOI: https://www.doi.org/10.22271/multi.2025.v7.i2c.814

सारांश
मनुस्मृति में शिक्षा को मानव जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग माना गया है। मनु ने शिक्षा को न केवल ज्ञानार्जन का साधन बताया है, बल्कि इसे व्यक्ति के चरित्र-निर्माण, नैतिक विकास, और धर्मपालन का आधार माना है। उनके अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि जीवन को अनुशासित, सुसंस्कृत और सदाचारयुक्त बनाना है। मनु के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य केवल लौकिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि आत्मा का शुद्धिकरण और मोक्ष की प्राप्ति है। शिक्षा से व्यक्ति में विवेक, संयम और सत्यनिष्ठा जैसे गुणों का विकास होता है।
मनुस्मृति में शिक्षा को मानव जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग माना गया है। मनु ने शिक्षा को न केवल ज्ञानार्जन का साधन बताया है, बल्कि इसे व्यक्ति के चरित्र-निर्माण, नैतिक विकास, और धर्मपालन का आधार माना है। उनके अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि जीवन को अनुशासित, सुसंस्कृत और सदाचारयुक्त बनाना है।

कूटशब्द: शिक्षा, स्मृतिकाल, गुरूकुल, उपनयन संस्कार, विद्या, श्रद्धा, मूल्य, धर्म के दस लक्षण, विनय

प्रस्तावना

शिक्षा जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक और अनिवार्य है। इसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य प्राचीनकाल से ही यत्नशील रहा है। शिक्षा ही है जो मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाती है। यह भौतिक जीवन में तो उन्नति कराती ही है, आध्यात्मिक जीवन में भी गति प्रदान करती है। कहा है 'सा विद्या या विमुक्तये।' [1] अर्थात् विद्या जीवन-मुक्ति प्रदान कराने का भी साधन है। 'विद्यया अमृतमश्नुते' [2] इस उक्ति के अनुसार विद्या से ही मनुष्य अमरत्व (अक्षय कीर्ति और मोक्ष) को प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवदगीता में भी कहा गया है कि- "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।"[3] इस प्रकार विद्या लौकिक तथा पारलौकिक दोनों जीवनों के लिए उपादेय है।

वैदिक काल में शिक्षा सर्वांगीण विकास, नैतिक उत्थान, संस्कृति व धर्म का संरक्षण तथा मोक्ष प्राप्ति पर केंद्रित थी । वैदिक शिक्षा से तात्पर्य उस ज्ञान से है जो वेदों में सुरक्षित है और जो उस युग में प्रचलित थी। वैदिक शिक्षा न तो पुस्तकीय थी और न ही जीविकोपार्जन का साधन थी। इस काल की शिक्षा ने व्यक्तियों का शारीरिक, मानसिक, नैतिक,बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास किया। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र-निर्माण और सामाजिक व राष्ट्रीय कर्तव्यों का बोध कराना था। यह निःशुल्क थी और गुरूकुलों में छात्र सादा जीवन जीते थे। वैदिक काल में स्त्रियों को भी शिक्षा का अधिकार था। गार्गी, अपीला, घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियाँ वेदों और दर्शन पर शास्त्रार्थ करती थीं। स्त्रियाँ वेदपाठ, यज्ञकर्म और शिक्षा कार्य में भी भाग लेती थीं। इस प्रकार वैदिक काल में शिक्षा सबके लिए समान थी।

वैदिक काल में जहाँ शिक्षा का स्वरूप उदार, सर्वांगीण और आध्यात्मिक था वहीं स्मृतिकाल में यह सामाजिक अनुशासन और वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित होकर अधिक व्यवस्थित किंतु सीमित हो गया। [2] स्मृतियों का समय लगभग तीसरी शताब्दी ई॰पू॰ से पाँचवीं शताब्दी ई॰ तक माना जाता है। उपनिषदों की शिक्षा के ही समान स्मृतियों में भी शिक्षादर्शन विवेचित है। स्मृतिकाल विधि-विधानों का काल था। मनुष्य का संपूर्ण जीवन इन्हीं विधि-विधानों से बंधा हुआ पूर्णरूपेण अनुशासित तथा नियमित था।

वेदों तथा स्मृतियों में कहा गया है कि आचार ही श्रेष्ठ धर्म है। आत्माभिलाषी द्विज को इस आचार के पालन में प्रयत्नशील होना चाहिए।

शिक्षा के संबंध में मनु ने अनेक प्रकार के विचार दिये हैं । स्मृतिकाल में गुरूकुल शिक्षा प्रणाली थी। ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में जाता था। वहाँ उपनयन संस्कार के बाद उसे गायत्री दीक्षा दी जाती थी और वह वेदाध्ययन आरम्भ कर देता था। शिक्षा की स्वस्थ परम्परा स्थापित करने के लिए स्मृतिकार मनु लिखते हैं कि गुरु सर्वप्रथम शिष्य को उपनीत करके उसे शौच, आचार, अग्निहोत्र और सन्ध्योपासना की विधि बताए। जिज्ञासु शिष्य जितेन्द्रिय होकर शुद्ध वस्त्र धारण कर शास्त्र- विधि से आचमन करे और उत्तराभिमुख होकर हाथ जोड़कर बैठे। तब गुरु उसे पढ़ाए।[4] वेद पढ़ने से पहले और बाद में शास्त्रोक्त विधि से गुरु के चरणों को स्पर्श करना और हाथ जोड़कर पढ़ना ही "ब्रह्मांजलि" है।शारीरिक शुद्धता से मन प्रसन्न होता है, जितेन्द्रियता से तेज बढ़ता है। फिर ब्रह्मपारायण होकर बैठने से एकाग्रता आती है तब विद्याध्यायन में गति आती है। आचार्य मनु स्त्री-शिक्षा के प्रति उदासीन थे, यह तब स्पष्ट होता है जब वे विवाह की आयु आठ वर्ष निर्धारित करते हैं।स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखने का विधान करते हैं।[5] स्त्रियों की अशिक्षा के कारण ही उन्हें शूद्र कोटि में रखा गया तथा पति-सेवा ही उनका सर्वोच्च कर्म बताया गया।[6]

आचार्य मनु आदर व मान्यता के क्रम में धन, संबंध, आयु, कर्म और विद्या-इन पाँच को मान्यता देते हैं। जिनमें विद्या सर्वप्रथम है-

वित्तं बन्धुवर्यः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मानस्थानानि ग़रीयो यद्यदुत्तरम् ॥ [7]

मनु की दृष्टि में मोक्ष की प्राप्ति विद्या तथा तप के द्वारा ही संभव है-

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ [8]

वेद पढ़ाने का अधिकारी तो आचार्य होता है किन्तु उनके स्थानापन्न रूप में आचार्यपुत्र, आचार्य की सेवा करने वाला, ज्ञानी, धार्मिक, शुचि(पवित्र), बान्धव, ज्ञान के ग्रहण-धारण में समर्थ, धनदाता, सज्जन और आत्मीय ये दश व्यक्ति धर्मानुसार पढ़ाने के अधिकारी होते है।[9] धर्मादि के अभाव में विद्यादान निष्फल होता है, इस बात का निर्देश करते हुए मनु कहते हैं कि उपाध्याय को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिज्ञासु जन को ही विद्या दें। अनिच्छित किसी व्यक्ति को दी गयी विद्या निष्फल हो जाती है जैसे ऊसर में बीज। वेदज्ञ विद्वान बिना किसी को पढ़ाये भले ही मर जाये किन्तु घोर आपत्ति में भी अपात्र शिष्य को न पढ़ाए। मनु के कहने का आशय यह है कि विद्याध्ययन के लिए भी एक मर्यादा है। उस मर्यादा का पालन करने वाला ही विद्याध्ययन का उचित पात्र है। विद्या जिज्ञासु को दी जाय, जो सहर्ष अङ्गीकार करे यही शैक्षिक मूल्य है। बिना पूछे, बिना इच्छा प्रकट किये हुए व्यक्ति को कभी विद्या नहीं देनी चाहिए। अन्यथा वह विद्या बोझ बन जायगी। मनु ने स्पष्ट शब्दों में मना किया है कि अपात्र को विद्या कभी न दें।[10]

मनु की दृष्टि में शिक्षा का महत्तम मूल्य है बड़ों का सम्मान करना-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥[11]

उठकर सर्वदा अभिवादन करने वाले, आयु अथवा ज्ञान में बढ़े हुए(वृद्ध) की नित्य सेवा करने वाले मनुष्य के चार- आयु, विद्या, यश और बल वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

विद्यार्थी में विनम्रता एवं शिष्टता का होना अनिवार्य है। गुरु को समुचित समादर देने पर ही गुरु प्रसन्न होकर विद्या देता है। गुरु-शिष्य संबंध की यह सुन्दर कड़ी है इसीलिए मनु कहते हैं कि शिष्य पहले आचार्य का अभिवादन करे। शिष्य के लिए शिष्टाचार अनिवार्य है। जिस शय्या या आसन पर आचार्य बैठे हों उस पर शिष्य न बैठे। यदि शिष्य किसी आसन पर बैठा हो तो आचार्य के आने पर आसन छोड़कर खड़ा हो जाए- शय्यासनस्थश्चैदेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्।[12]

मनु ने आयु की अपेक्षा ज्ञान के वृद्धत्व को महत्तम मूल्य माना है। उन्होंने कहा है कि केश पक जाने मात्र से कोई बड़ा नहीं होता बल्कि युवक भी यदि विद्वान हो तो उसे ही देवतागण वृद्ध (ज्ञान में) कहते हैं।[13] आगे वे कहते हैं कि धर्माभिलाषी पुरुष (आचार्य, गुरु आदि) को अपने शिष्यों को अहिंसा(अल्पतम ताडनादि) के द्वारा ही अध्ययनादि उपदेश करना चाहिए तथा मधुर वचन बोलना चाहिए।[14] जिसके वचन तथा मन सर्वदा शुद्ध एवं वशीभूत हैं वही वेदान्त के संपूर्ण फलों को प्राप्त करता है। अर्थात् वचन तथा मन के संयम से वेदान्त फल की प्राप्ति होती है।[15]

विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। इसके बिना उसमें एकाग्रता, मेधा एवं तेजस्विता नहीं आ सकती।[16] गुरु के साथ पूर्ण मर्यादित व्यवहार करने वाला शिष्य ही विद्याग्रहण कर पाता है और उसकी विद्या फलवती होती है। लेटे हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए या मुख फेरकर खड़े हुए गुरु की आज्ञा का श्रवण या उनसे वार्तालाप अनुचित है। सामने से आते हुए गुरु के सामने जायँ, उनका स्वागत करें और अभिवादन। गुरु के समीप एवं सम्मुख जाकर सिर झुकाकर उनका आदेश सुनना चाहिए। गुरु के पास शिष्य अपनी शय्या एवं आसन को उनसे नीचे रखें। परोक्ष में भी गुरु का नाम न ले। अर्थात् सामान्य व्यवहार में गुरु का नाम नहीं बोलना चाहिए। अवसर के अनुसार पवित्रभाव से तो उनका नाम जप भी किया जा सकता है। गुरु के चलने, बोलने या अन्य क्रियाओं की नकल न करें। गुरु की निन्दा किसी के मुख से न सुनें, स्वयं गुरु-निन्दा करना तो स्वप्न में भी न सोचे।'[17] गुरु-पत्नी को गुरु के समान ही आदर देना चाहिए।[18]

विद्या के लिए श्रद्धा आवश्यक है। वह श्रद्धा अध्येय विषय और अध्यापक दोनों के प्रति होनी चाहिए। श्रद्धायुक्त व्यक्ति किसी निम्नस्तरीय व्यक्ति से भी विद्याग्रहण करें। विद्या अमूल्य धन है, इसे किसी से प्राप्त किया जा सकता है- 'श्रद्दधान शुभां विद्यामाददीतावरादपि।[19]

इसी प्रसंग में मनु विष आदि से भी अमृत आदि की ग्राह्यता की बात करते हैं। अर्थात् यदि विष में अमृत हो तो उस विष से अमृत को, बालक से सुभाषित को, शत्रु से सदाचार को और अपवित्र से भी सुवर्ण को प्राप्त करना चाहिए।[20] इसी प्रकार स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुभाषित और अनेक प्रकार के शिल्प(कला-कौशल-चित्र-

लेखनादि) सबसे लेना चाहिए।[21] वैध-साधनों से अर्जित और श्रद्धापूर्वक दिया गया अन्न-धनादि अधिक सुखद और पवित्र होता है किन्तु अश्रद्धापूर्वक दी गई बहुत बड़ी धनराशि भी लाभ दायक नहीं होती। अभिप्राय यह है कि दान श्रद्धापूर्वक होना चाहिए। यह श्रद्धा ही दिये गये दान को फलदायी बनाती है। यह 'श्रद्धा' ही दानधर्म का मूल्य है।

धर्म तभी फलदायी होता है जब हम उसे जीवन-शैली के रूप में अपना लें। धर्मकार्य करें सामान्य भाव से। प्रदर्शन के उद्देश्य से किये गये धर्मानुष्ठान फलहीन हो जाते हैं। इसलिए मनु कहते हैं कि हम यज्ञ, जप, तप सब कुछ करें लेकिन किसी से कहे नहीं। किये गये दान की चर्चा कहीं और कभी न करें। यही शिक्षा का सर्वोच्च मूल्य है।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परकीर्तनात् ।।
धर्मशनैः संचिनुयाद्वल्मीकनिवपूर्तिकाः।
परलोक सहायार्थ सर्वभूतायपीडयन्।।[22]

यज्ञ-यागादि करें किन्तु असत्यभाषण न करें। यज्ञफल की प्राप्ति सत्य निष्ठता से होती है। इसी प्रकार दान में भी मौन का आश्रयण अनिवार्य होता है। दान करके प्रचार न करें, दूसरे को दिखलाकर भी दान न करें, दान करके धन्यवाद की इच्छा न करें तभी दानधर्म सफल होता है। अभिप्राय यह है कि धार्मिक कृत्य अवश्य करें किन्तु प्रदर्शन या आडम्बर न करें, अपने कृत्य पर अहंकार भी न करें। मनु की दृष्टि में यही शिक्षा का मूल्य है।[23]

धार्मिक कृत्य करने से सांसारिक विभूतियाँ मिलती है तथा मृत्यु के उपरान्त प्राणी की सद्गति होती है अर्थात् स्वर्ग प्राप्ति होती है या परममोक्ष की भी प्राप्ति होती है। यह वास्तविक सहचर है। अन्य सारी वस्तुएँ जो जगत् में अर्जित की जाती है, जगत् में छूट जाती है, कोई साथ नहीं जाती। यदि कोई साथ रहता है तो धर्म। इसीलिए दीमकवृत्ति से हमें धीरे-धीरे धर्म-संचय करना चाहिए।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलः ।।
एकः प्रणायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।[24]

अर्थात् परलोक में माता-पिता, पुत्र, स्त्री, बान्धवादि कोई सहायक नहीं होता, केवल धर्म ही काम आता है। यह जीव एकाकी आता है, जाता है और एकाकी ही पुण्य-पाप का फल प्राप्त करता है। इसलिए सदैव धर्म का शनैः शनैः संग्रह अपनी सहायता हेतु करें। इससे प्राणी दुस्तर तक (नरक) को पार कर जाता है। यह भी शिक्षा का ही मूल्य है।

विधिपूर्वक धर्मानुष्ठान करना, प्रदर्शन या आडम्बर से सर्वथा दूर रहना यही धर्म समन्वित शैक्षिक मूल्य है। धार्मिक कृत्यों से भी बढ़कर धर्म है- 'भूतहित'। सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखना, सबको आत्मवत् समझना, सभी प्राणियों में एक ही आत्मा का निवास जानना ये विशिष्टतम शैक्षिक मूल्य है।

यो बन्धन वधक्लेशान्प्राणिनां च चिकीर्षति।
स सर्वस्भ हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ।।'[25]

अर्थात् व्यक्ति स्वयं सुखी तभी रह सकता है जब अन्य प्राणियों को वह सुखी रखे। किसी को बाधित न करे, कष्ट न दे। शिक्षित व्यक्ति का आचरण ऐसा ही होना चाहिए।

मनु कहते हैं कि बिना विद्याध्ययन किये हुए गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं करना चाहिए। यदि पूर्ण शैक्षिक काल 36 वर्षों तक न पढ़ सके तो कम से कम समय तक ही पढ़ ले, तब विवाह करके गृहस्थ जीवन शुरू करे। व्यावहारिक जीवन में शिक्षा बहुत उपयोगी है। इसीलिए अल्पातिअल्प दिनों तक ही पढ़कर गृहस्थ बनाना चाहिए। जो व्यक्ति वेदाध्ययन किये बिना गृहस्थ जीवन आरम्भ कर देता है वह व्यावहारिक जीवन में सफल नहीं हो पाता है। उसका नाश हो जाता है।

कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः।[26]

इसके विपरीत वेदाध्ययन से समृद्ध कुल अल्पधन वाला होता हुआ भी श्रेष्ठ कुल में गिना जाता है और महान् यश को प्राप्त करता है।

मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षति महद्यशः ।।[27]

मनु के अनुसार ज्ञान के बिना देहियों की शुद्धि नहीं होती। ज्ञान ही देहियों की शुद्धि का कारण है-

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वायुपाँजनम्।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम्॥[28]

मनु के लिए शिक्षा सर्वोच्च मूल्यों में से एक है। इसी कारण उन्होंने धर्म के दस लक्षणों में विद्या को भी स्थान दिया है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥[29]

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं क्रोध न करना- धर्म के दस लक्षण हैं।

इस दशविध धर्मानुष्ठान से ही मोक्षप्राप्ति संभव है।[30]

शिक्षा से ही विनय की प्राप्ति संभव है और इसी विनय के कारण पृथु और मनु ने राज्य, कुबेर ने धन, ऐश्वर्य और विश्वामित्र ने क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया।[31] मनुस्मृतिकार ने सातवें अध्याय में राजा को निर्देश दिया है कि उसे तीनों वेदों के ज्ञान, दण्डनीति (शासन और न्याय), आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), आत्मविद्या (आध्यात्मिक विद्या) और लोकव्यवहार या वाणिज्य (व्यापार) का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ये वे विषय हैं जिन्हें राजा को प्रजा के कल्याण के लिए सीखना चाहिए-

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः॥[32]

मनुस्मृतिकार ने अर्थ के उपार्जन के साधनों को जीवन के साधनों के रूप में निरूपित किया है। मनु ने इन साधनों को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। इन दस साधनों में विद्या, शिल्प, नौकरी, सेवा, पशुपालन, व्यापार, कृषि, धैर्य, भिक्षा और ब्याज को जीवन का हेतु स्वीकार किया है-

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः॥[33]

यहाँ भी मनु ने जीवन के दस हेतुओं में विद्या को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है।

स्मृतिकाल में शिक्षा का एक बड़ा उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना था। परम्परागत रूप से यह माना
जाता था कि नैतिकता और चारित्रिक पवित्रता के अभाव में केवल बौद्धिक उपलब्धियों का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। मनु ने "आचारः परमो धर्मः"[34] की बात कहकर स्पष्ट किया है कि सम्यक् और पवित्र आचरण ही श्रेष्ठ धर्म माना जाता था। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनु ने शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग बताया है, यह भावना आज भी समाजशास्त्रियों में है। मनुस्मृति में जितने भी विधि-विधान, कर्तव्य, नियमादि निर्दिष्ट हैं, उसके केन्द्र में शिक्षा ही है। मानव जीवन में शिक्षा की महत्ता स्थापित करना मनु का सर्वोत्कृष्ट एवं अतिवैज्ञानिक विचार है। विद्या के साथ शिष्टाचार, श्रद्धा, जिज्ञासा को जोड़ कर विद्या और उसकी अध्ययन पद्धति को अत्यन्त सुन्दर एवं उत्कृष्ट बना दिया है। शिक्षा का यही तो महत् मूल्य है। इनसे ही तो विद्यावान् शिष्ट, विनम्र एवं सदाचारी बनता है। गुरु के प्रति आस्था एवं अति सम्मान का भाव भारतीय शिक्षा पद्धति का सर्वोत्कृष्ट मूल्य है। विद्या वैयक्तिक उन्नति तो कराती ही है समाज को सुसंस्कृत बनाती है, व्यक्ति के जीवन के महान् उद्देश्यों की पूर्ति कराती है।

इस प्रकार मनु की दृष्टि में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन नहीं अपितु चरित्र, आचार, धर्म और आत्मिक उत्थान का साधन है। यह व्यक्ति और समाज दोनों के विकास की नींव है।

पाद-टिप्पणियां

1. श्रीविष्णुपुराण-1/9/41
2. मनुस्मृति -12/104
3. श्रीमद्भगवद्गीता 4/38
4. मनुस्मृति-2/69-70
5. वही, 9/18
6. वही, 2/67
7. वही, 2/136
8. वही,12/104
9. वही, 2/109-110
10. वही, 2/112-113
11. वही, 2/121
12. वही, 2/117-119
13. वही, 2/156
14. वही, 2/159
15. वही, 2/160
16. वही, 2/177-181
17. वही, 2/195-205
18. वही, 2/211-212
19. वही, 2/238
20. वही, 2/239
21. वही, 2/240
22. वही, 4/225-226
23. वही, 4/237-238
24. वही, 4/239-241
25. वही, 5/46
26. वही, 3/1-4
27. वही, 3/66
28. वही, 5/105
29. वही, 6/92
30. वही, 6/93
31. वही, 7/42
32. वही, 7/43
33. वही, 10/116
34. वही, 108

संदर्भग्रंथ

1. स्मृति-संदर्भः, (1-6 भाग), नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1988
2. मनुस्मृति, शास्त्री हरगोविंद, चौखंभा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1970
3. मनुस्मृति, गोयल प्रीति प्रभा, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2025
4. अष्टादश स्मृति, मिहिरचंद, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1990
5. याज्ञवल्क्यस्मृति, शर्मा, नारायण, नागप्रकाशक, दिल्ली,1985
6. याज्ञवल्क्यस्मृति, पाण्डेय, उमेश चन्द्र, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1983
7. ईशादि नौ उपनिषद्, गोयन्दका हरिकृष्ण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2022
8. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2007
9. श्रीविष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2002